पर्यावरण चिन्तन का एक नया आयाम

निरन्तर प्राकृतिक आपदाओं के पीछे पर्यावरण से छेड़छाड़ ही मुख्य कारण है इसके लिए समाधान भी ढूंढे जा रहे हैं। क्या उन समाधानों को प्रकृति के सामन्जस्य से ढूंढने का प्रयास अधिक कारगर सिद्ध न होगा। जानिए **डॉ० रामकठिन सिंह जी** के चिन्तन से

" होती है क्यों आज घाघ की
कथनी सही नहीं?
जाने क्यों बारिश में बारिश,
होती आज नहीं?"

ये कुछ ऐसे अहम् प्रश्न है जो आज पूरे विश्व को चिन्ता में डाले हुए हैं। दिन-ब-दिन मौसम के बदलते रुख से खाद्यान्न-आपूर्ति में संकट उत्पन्न होने की सम्भावना बढ़ने लगी है। यही है सबकी चिन्ता का बड़ा कारण।

एक समय वह था जब किसान को मौसम के रुख का पूर्वानुमान घाघ की कहावतों द्वारा प्राप्त हो जाता था। ये कहावतें खेती के संदर्भ में किसानों की न केवल मार्गदर्शिका का काम करती थीं, अपितु उनकी हर छोटी बड़ी दैनिक समस्या का समाधान भी ढूँढने में उनकी मदद करती थीं। चूँकि ये कहावतें वर्षों के अनुभवों के आधार पर गढ़ी गई थीं, अतः इनके माध्यम से की गई भविष्यवाणी ज्यादातर सत्य होती थीं। स्वयं घाघ के बारे में यह कहा जाता है कि वे बचपन से ही खेती-बारी में विशेष रुचि रखते थे तथा इनसे जुड़ी सभी समस्याओं को समझने व उनके निदान ढूंढने में लगे रहते थे। धीरे-धीरे उनका यह ज्ञान प्रगाढ़ होता गया और उनकी कही हुई बातें सत्य सिद्ध होने लगीं। इस तरह दूर-दूर से लोग अपनी समस्याओं का समाधान पाने के लिए उनके पास आने लगे थे। डॉ० रमेश प्रताप सिंह कृत "घाघ और भड्डरी की कहावतें" नामक एक संकलन में इस विषय पर विस्तृत जानकारी दी गई है।

आगे चलकर घाघ ने अपने अनुभवों को सरल कविता का रूप दिया, जिसे याद करना आसान हो गया। आश्चर्य नहीं कि ये कहावतें लोगों की जुबान पर रहने लगीं। खासकर ग्राम्यांचल में बसे लोग, चूंकि अपनी रोजमर्रा की खेती एवं सामाजिक समस्याओं के निदान इन्हीं कहावतों में पाते थे, अतः ये कहावतों में पाते थे, अतः ये कहावतें उनके लिए गुरुमंत्र-सी हो गई थीं, और जहाँ तक मौसम का प्रश्न था, ये कहावतें तो उनके लिए "वेदर फोरकास्टिंग" का काम करती थीं। जैसे-

"असली गलिया अंत विनासै,
गली रेवती जल को नासै।
भरनी नासै तनौ सहूतो,
कृतिका बरसे अंत बहूतो।"

अर्थ यह है कि-यदि चैत के अश्वनि नक्षत्र में वर्षा हो जाए, तो फिर चौमासे में सूखा पड़ना अवश्यम्भावी है। इसी तरह रेवती नक्षत्र में वर्षा हो जाने पर, आगे वृष्टि होने की संभावना नहीं रह जाती है। भरनी नक्षत्र में पानी का बरसना, अच्छा होता है क्योंकि इससे खेत के सभी घास-पात नष्ट हो जाते हैं तथा यदि कृतिका नक्षत्र में पानी बरसता है, तो अंत तक अच्छी वर्षा होना सुनिश्चित है। ऐसी दशा में किसान को अच्छी फसल मिलने की उम्मीद बढ़ जाती है। घाघ की यह कहावत किसान को पूर्व चेतावनी देते हुए, आवश्यक उपाय करने का निर्देश भी देती हैं।

वास्तव में, ये कहावतें इसलिए सत्य हुआ करती थीं कि तब मौसम का मिजाज अभी बदला नहीं था। "सर्दी, गर्मी तत्पश्चात, आती है रिमझिम बरसात"। हाँ तब 'जाड़ा, गर्मी, बरसात का निर्बाध चक्र चलता रहता था। किन्हीं कारणों से होने वाली अनावृष्टि अथवा अतिवृष्टि का पता अनुभवी व्यक्तियों को पहले ही लग जाता था। यथा-

"तपा जेठ में जो चुइ जाय,
सभी नखत हलके परि जांय।।"

ज्येष्ठ की मृगशिरा के अन्तिम दस दिनों को दसतपा कहा जाता है।

उपरोक्त कहावत के अनुसार, इस दसतपे में यदि वर्षा की एक बूँद भी गिर गई, तो समझ लीजिये कि वर्षा के अन्य सभी नक्षत्रों में पानी कम बरसेगा, यानी सूखा पड़ेगा। इस तरह इस कहावत में दिए गए संकेत के आधार पर किसान कोई उचित वैकल्पिक योजना बनाकर अपना नुकसान कम कर सकता है। कुछ इसी तरह के संकेत घाघ की निम्न कहावत से भी मिलते हैं-

"दिन को बद्दर रात निबद्दर,
बहे पुरवईया झब्बर,
कहें घाघ कुछ होनी होई,
कुआँ के पानी धोबी धोई।"

अर्थात्-यदि दिन में बादल घिरे रहें, और रात में आसमान साफ रहे तथा रात-दिन तेज-तेज पुरवा बयार चलती रहे, तो निश्चित ही सूखा पड़ेगा और वह भी ऐसा कि धोबियों को कुएं से

पानी निकालकर कपड़े धोने पड़ेंगे।

इस तरह घाघ ने कृषि संबंधित सभी पहलुओं पर अपनी कहावतों के माध्यम से किसानों को पूर्वानुभास देने की कोशिश की थी। पर आज स्थित बदल गई है। मौसम इस कदर अनिश्चित हो गया है कि पूर्वानुमान लगाना मुश्किल हो गया है। बेमौसम बरसात, सर्दी या गर्मी आम बात-सी हो गयी है-

''बदल रहा मौसमी कलेवर हर
पल-छिन ऐसे
रंग बदलता सहज अचानक,
हो गिरगिट जैसे''

यही कारण है कि आज घाघ की कहावतें झूठा साबित होने लगी हैं। देखा जाय तो इन सबके मूल में है पर्यावरण में तेजी से हो रहा बदलाव, जो मौसम की बढ़ती अनिश्चितता का एक बड़ा कारण बनता जा रहा है। सत्य तो यह है कि इसकी जड़ में हमारा खुद का बड़ा हाथ रहा है। दिने-दिन बढ़ती हमारी लिप्सा न जाने हमें कहाँ ले जायेगी। गाँधी जी ने ठीक ही कहा था, ''यह धरती सभी की जरूरतों को पूरा कर सकती है, लेकिन एक व्यक्ति के लालच को नहीं''। मानवीय लिप्सा पर चिन्ता व्यक्त करते हुए, श्रेष्ठ गीतकार श्रीपाल सिंह ''क्षेम'' ने भी अपने एक गीत में लिखा है,'' एक सागर किसी के लिए कम यहाँ।'' इस लिप्सा के कारण प्राकृतिक संसाधनों का जिस तरह अंधाधुंध दोहन हो रहा है, उसी के परिणाम तो है ये बदलाव, यह अनिश्चितता।

वनों की अंधाधुंध कटाई का ही यह परिणाम है कि देश में जहाँ वनाच्छादित क्षेत्रफल 35-36 प्रतिशत होना चाहिए, आज वह घटकर 22 प्रतिशत रह गया है। वास्तविकता तो यह है कि इस तथाकथित वनाच्छादित क्षेत्रफल का एक अच्छा बड़ा हिस्सा ''उजड़े हुए वनों'' की श्रेणी में आता है, जो सही मायने में कहीं से भी वन-सा नहीं दिखता। परिणामस्वरूप, एक तरफ जहाँ खासकर वनाश्रित जनजातियों की जीविका छिनी है, वहीं भूख और प्यास से बेकल वन के पशु-पक्षी भी बेघर हुए हैं। उन्होंने अब गाँव और शहरों की ओर अपना रुख कर लिया है। आखिर, ''पेड़ न पल्लव जंगल खाली, वन के राजा कहाँ रहें, कब तक भूखे-प्यासे रहकर देह जलाती धूप सहें?'' वनों का आच्छादन घटने का दुष्परिणाम चौतरफा देखने को मिल रहा है। साल-दर-साल वर्षा में आ रही कमी, बढ़ता तापमान, भूमिक्षरण आदि सभी उसी के तो प्रतिफल हैं। ''बढ़ते तापमान के डर से गलने लगा हिमालय''। हाँ, सदियों पुराने ग्लेशियर्स के पिघलने की चर्चा भी अब आम सुनने को मिल रही है, जो एक महती चिन्ता का कारण बनती जा रही है।

कुछ दिन पहले की बात है, मैं किसी शहर में अपने एक मित्र के यहाँ ठहरा हुआ था। हमलोग उसके ड्राइंगरूम में बैठकर चाय पी रहे थे कि उसका छोटा बच्चा ''बन्दर-बन्दर'' चिल्लाता हुआ घर में घुसा। वह डरा-सहमा-सा लग रहा था। बन्दरों के छत पर होने का आभास तो हम लोगों को भी हो गया था। अपने पापा की गोद में दुबककर बैठे हुए बच्चे ने पूछा, ''पापा, ये बन्दर कहाँ से आते हैं?'' प्रश्न सुनकर हम सब अवाक् हो उसकी तरफ देखने लगे। फिर मैंने उसे यह निम्न किस्सा सुनाया।

''बन्दरों आदि जानवरों का घर जंगल में है। जंगल के कट जाने तथा पोखरे-नदियों का पानी सूख जाने के कारण उन्हें न तो भोजन मिल पा रहा है, न ही पीने का पानी। इस बात को लेकर जंगल के राजा 'शेर' बेहद खफा हैं। उन्होंने बन्दरों की अलग-अलग टोलियाँ गाँव और शहरों में इस बात की पड़ताल करने को भेजी हैं कि जहाँ-जहाँ भी जंगल काट कर मकान-कारखाने बने हैं, जंगलवासी अब वहीं बसेंगे। इसीलिए गाँव-शहरों में बन्दरों, तेंदुए व चीतों के घुसने की घटनाएँ अक्सर सुनी जाने लगी हैं। इस कारण लोगों के मन में डर पैदा हो रहा है। लोगों के साथ-साथ, सरकार भी परेशान है। अतः जगह-जगह बैठकें हो रही हैं और लोग इसका उपाय तलाशने का प्रयास कर रहे हैं। वनों, तालाबों तथा अन्य जलाशयों के पुनरुद्धार की योजनायें बन रही हैं। यदि सब कुछ ठीक-ठाक रहा, तो जंगल फिर से आबाद होंगे और ये जानवर फिर वापस अपने घर जंगल को लौट जायेंगे।'' हमारा जवाब सुनकर बच्चा आश्वस्त लगा। इस बीच बन्दर भी कहीं अन्यत्र चले गये। यूँ तो यह एक मनगढ़न्त किस्सा था, पर इसमें वास्तविकता भी कम नहीं थी।

इस परिप्रेक्ष्य में यह विचारना भी आवश्यक है कि अकेले मौसम में ही बदलाव नहीं आया है। बल्कि उसके साथ सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिवर्तन भी हुए हैं और हो रहे हैं। यहाँ तक की आपसी रिश्तों में भी। जिनका असर गाँव-शहर में स्पष्ट देखने को मिल रहा है। इन सामाजिक परिवर्तनों ने भी पर्यावरण को कम प्रभावित नहीं किया है। उदाहरणार्थ, समय-समय पर चुनकर आये ग्राम प्रधानों ने अपने-अपने कार्यकाल में गाँव की खाली परती जमीनें,

पशुओं के चारागाह, क्रीड़ास्थल, यहाँ तक कि ताल-पोखरे तक पैसे की लालच में पट्टा कर दिया। समय के साथ ये पट्टेदार उनके मालिक बन बैठे। परिणाम यह हुआ कि आज न तो ताल रहे, न पोखरे। कुएँ तो कबके पाट दिये गये हैं। ऐसी दशा में बारिश का पानी भला कहाँ और कैसे संचित होगा? और फिर भू-जल ''रिचार्ज'' कैसे हो पायेगा?

निम्न पंक्तियाँ किंचित ऐसे ही सवालों की ओर संकेत करती हैं जो या तो मौसम के बदलाव के कारण उठ रहे हैं अथवा उनके परिणाम हैं-

''ओल्हा-पाती खेला करते,
जिस महुए की डाली पर
होड़ लगाते बीच दुपहरी,
जामुन काली-काली पर,
नहीं रहा वह बूढ़ा बरगद,
जो यादों में बसता है।''

और इसी तरह-

''इतने दिन हो गये गाँव में,
चिड़िया कोई दिखी नहीं
तोता-मैना के किस्सों की,
बात किसी से सुनी नहीं,
'पाहुन' की जो खबर सुनाये,
काग न छत पर दिखता है।''

पर्यावरण में हो रहे बदलाव का एक कारण और भी रहा है। हमारे देश में जब से आधुनिक खेती का दौर चला, तभी से खेती में उपयोग होने वाले प्राकृतिक संसाधनों का दोहन तेजी से बढ़ना शुरु हुआ। हरित-क्रांति के दौरान बौनी प्रजातियों का विकास हुआ। चूँकि ये प्रजातियाँ अधिक उपजाऊ थीं, अतः उनके लिए अधिक पानी और खाद की आवश्यकता हुई। जहाँ एक तरफ पानी और खाद के अधिक प्रयोग से नये-नये हानिकारक कीट व बीमारियों का उद्भाव हुआ, जिसके फलस्वरूप पौध-रक्षा संबंधित रसायनों का उपयोग अधिक होने लगा, वहीं दूसरी तरफ, रासायनिक खादों की उपलब्धता व सरल उपयोग के कारण, गोबर और कम्पोस्ट का चलन कम होता गया। यही नहीं, गेहूँ-धान के फसल-चक्र का प्रचलन इस कदर बढ़ा कि अन्य फसलें विशेषकर मोटे अनाज व दलहनी फसलें तो मानो खेती से गायब ही हो गयी। परिणामस्वरूप मिट्टी की उर्वरता एवं उसका स्वास्थ्य दिन-ब-दिन गिरता गया और आज स्थिति ऐसी हो गई है कि दस साल पहले जैसी उपज प्राप्त करने के लिए किसानों को पहले से डेढ़ से दो गुना ज्यादा रासायनिक खादों का प्रयोग करना पड़ रहा है। इस तरह खेती में न केवल लागत बढ़ रही है, अपितु रसायनों की मात्रा भी भूतल में बढ़ती जा रही है, जो भू-जल को जहरीला बना रहा है। परिणामस्वरूप, ''गहरे से गहरे भूतल का पानी पेय नहीं'' जैसी दयनीय स्थिति उत्पन्न हो गई है। देश के कई क्षेत्रों के भू-जल में आर्सेनिक, फ्लोराईड आदि जैसे जहरीले तत्वों की मात्रा बढ़ती जा रही है, जो मानव के साथ पशुओं और पक्षियों के लिए हानिकारक सिद्ध हो रहे हैं। हाँ, यही है आज की खेती का वास्तविक चरित्र।

कभी वह भी समय था, जब मरे हुए जानवर की गंध पाते ही गिद्धों का दल आसमान में मँडराने लगता था। पर आज, ''मरे-पड़े जानवर न दिखता आतर गिद्ध कोई'' की स्थिति हो गई है। गिद्धों की प्रजाति तो मानो खत्म ही हो गयी। इसी तरह दादी-नानी की कहानियों में तोता-मैना की कहानियों का प्रमुख स्थान होता था। परन्तु ''तोता-मैना के किस्से तो कब के सुने हुए''। गाँव के ओरी-ओरी बैसवारी में शाम होते ही कौवों की पंचायत नित्य की घटना थी। अब वह सब सपना-सा हो गया है। घर के मुंडेरों पर काग की 'काँव-काँव' किसी पाहुन के आने का संकेत देता। पर ''बैसवारी क्या कटी, मुंडेरे काग न बोले हैं,'' आज एक कटु सत्य हो गया है।

मौसम में आई अनिश्चितता निश्चय ही एक बड़ी चिन्ता का कारण है। इसके दुष्परिणाम भी अब स्पष्ट देखने को मिल रहे हैं। यह इसी का फल है कि कभी अनावृष्टि, तो कभी अतिवृष्टि का सामना करना पड़ रहा है। ''जाने क्यों बारिश में बारिश होती आज नहीं, लेकिन जब होती है बारिश थमती तनिक नहीं''। इसी प्रकार, तापमान का अचानक बढ़ना-घटना, केवल फसलों के लिए ही नहीं, अपितु अन्य जीवों को भी प्रभावित करने लगा है। ''जाने क्यों नाराज सूर्य का पारा चढ़ा हुआ, तापमान पहले से ज्यादा लगता बढ़ा हुआ'' जैसे प्रश्नों पर चिन्तन करने की आवश्यकता है। अनुमान लगाया जा रहा है कि सन् 2050 तक पृथ्वी का तापमान औसतन 2.5 डिग्री सेन्टीग्रेड बढ़ जायेगा। इस बढ़े हुए तापमान के दुष्परिणाम का सहज ही अन्दाजा लगाया जा सकता है। स्पष्ट है कि इन अनिश्चितताओं के कारण ही आज घाघ की कहावतें कसौटी पर खरी नहीं उतर पा रही हैं। अन्य कोई कारण नहीं है।

विश्व में खाद्यान्न की समस्या दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। एक तरफ निरन्तर घटते संसाधन, तो दूसरी तरफ मौसम की बढ़ती अनिश्चितता खेती के लिए गम्भीर चुनौतियाँ साबित हो रही हैं। समस्त मानव जाति के साथ-साथ

जीव-जन्तुओं व जैविक विविधताओं का अस्तित्व भी खतरे में पड़ गया है। पर इन सब के लिए जिम्मेदार भी तो हम ही हैं। यह सही है कि मानव समाज के उत्थान के लिए प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग आवश्यक है, पर उनका दोहन इस कदर तो न किया जाए कि आने वाली पीढ़ियों के लिए कुछ शेष ही न रह जाए। अतः अब समय आ गया है कि हम अपने विवेक से काम लें, तथा प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग संतुलित और उचित ढंग से करने के विषय में गम्भीरता से विचार करें।

दुःखद बात तो यह है कि जब यह सब हो रहा था, तब सरकारी-तंत्र मानो सो रहा था। अब जब पानी सिर के ऊपर आ गया है, तो सरकार की तंद्रा टूटी है। पर देर आयद, दुरुस्त आयद। देर से ही सही, कुछ पहल तो हो रही है। ताल-पोखरों के पुनरुद्धार की योजना शुरू की गई है, वृक्षारोपण पर जोर दिया जा रहा है, पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता के नारे लगाये जा रहे हैं। निःसन्देह ये कुछ अच्छे कदम हैं, पर बिना जनता की भागीदारी के इनकी सफलता संदिग्ध है। इसलिए हर स्तर से जन-जागरण अभियान चलाने की आवश्यकता अनिवार्य लगती है। स्कूलों से लेकर विश्वविद्यालयों तक, पर्यावरण विषयक ज्ञान के प्रसार-प्रचार की जरूरत है। पानी से लेकर ऊर्जा तक, सभी संसाधनों के विवेकपूर्ण उपभोग के साथ-साथ उनके संचयन व संरक्षण के विषय में प्रत्येक व्यक्ति को सचेत करना होगा। पानी और ऊर्जा की बचत तो हमारी आदतों का हिस्सा बन जानी चाहिए। ''छत से गिरती बूँद-बूँद पानी को रोकें'' और यह कि ''चलो करें शुरुआत पौध बरगद की रोपें'', जैसे विचारों को प्रसारित करने के उद्देश्य को ही लक्ष्य बनाएँ।

मौसम में हो रहे बदलाव का असर सबसे ज्यादा खेती पर पड़ने वाला है। किसानों के साथ-साथ नीति-नियन्ताओं व कृषि वैज्ञानिकों के लिए भी कई नयी चुनौतियाँ खड़ी हो गई हैं। अतः सबको मिलकर इनका निदान ढूँढना होगा, वह भी जितनी जल्दी हो, उतना ही अच्छा। चूँकि हमारे देश की ज्यादातर जनता अशिक्षित है तथा गाँवों में रहती है, उन्हें वातावरण के प्रति सचेत व जागृत करने की विशेष आवश्यकता है। खेती-बारी व ग्राम-उद्योगों से जुड़े सभी लोगों को प्रशिक्षित करना एवं संचार माध्यमों द्वारा पर्यावरण के विषय में जागरूक करना आज हमारी सबसे बड़ी प्राथमिकता होनी चाहिए।

प्रकृति का खौफ

- डॉ० रामकठिन सिंह

ओढ़ मुखौटा मौसम क्षण-क्षण
कब क्या कुछ कर जाता,
बारिश के उतावले पन में
गाँव शहर बह जाता।
जाती दृष्टि जहाँ तक दिखता
पानी का रेला है,
अर्थ जनता वही बाढ़ का
जिसने दुःख झेला है।
रौद्र रूप ले कभी, नीर का
बूँद-बूँद पी जाता,
ताल-पोखरें नदी-नाल सब
जल विहीन कर जाता।
सूरज के संग हाथ मिलाकर
अग्नि बाण बरसाता,
हरे-भरे सब खेत, बगीचे
तहस-नहस कर जाता।
बढ़ते तापमान के डर से
गलने लगा हिमालय,
हिलने लगा देख खतरे को
बदरीनाथ शिवालय।
होकर कुपित सिंधु भी था जब
लाँघ चला सीमाएँ,
गाँव-शहर क्या बाग-बगीचे
थी बह चली शिलाएँ।
मानव-कृत आपद-निरोधक
छल-बल काम न आए,
चिड़िया जब चुग गई खेत
फिर क्या होता पछताए।
खफ़ा हुई इस कदर प्रकृति क्यों
मन में जहर भरा क्यों?
चलो विचारें बैठ बचा लें
मरती हुई धरा को।

मो० 09721719736